E-content for Student of Patliputra University Patna.

Course - B.A honours, part-3

Subject- Hindi, paper-06,unit-01

Topics/heading-"काव्य-लक्षण"क्या है

अथवा'काव्य किसे कहते हैं?अथवा 'काव्य के लक्षणों को स्पष्ट करें। विभिन्न लक्षणों की तुलनात्मक समीक्षा करें ।सर्वाधिक सटीक लक्षण के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करें।

--डॉ प्रफुल्ल कुमार एसोसिएट प्रोफेसर अध्यक्ष हिन्दी,विभाग आर आर एस कॉलेज मोकामा पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना।

काव्य के द्वारा जो कार्य संपन्न हो उसे काव्य कहते हैं-**कवेरिदं कार्यभावोवा अभिनव उक्ते** ।आचार्य अभिनवगुप्त की पुस्तक 'ध्वन्यालोक लोचन' में काव्य के विषय में कहा गया है **-कमनीयं काव्यं** ।

स्पष्ट है कि काव्य को समझने के लिए सर्वप्रथम कवि शब्द को समझ लेना अच्छा है। 'कु' धातु में 'अच' प्रत्यय जोड़कर कवि शब्द की व्युत्पत्ति हुई है ।'कु' का अर्थ व्याप्ति अकाश अर्थात सर्वज्ञता है।फलत: कर्म सर्वज्ञ है द्रष्टा ।श्रुति में भी कवि के विषय में कहा गया है-" **कविर्मनिषी परिभू: स्वयंभू** अर्थात अपनी अनुभूति या दृष्टि क्षेत्र में सब कुछ समेट लेने वाला और स्वयंभू अर्थात अपनी अनुभूति के लिए किसी का भी जो ऋणी न हो। तात्पर्य यह कि काव्य उसी मनीषी की सृष्टि है जो स्वयं संपूर्ण एवं सर्वज्ञ हो। वैदिक साहित्य में कवि दृष्टा एवं ऋणि समानार्थक है और वेद प्रकाशक अर्थात ब्रह्मा को आदि कवि कहा गया है। लौकिक साहित्य में कवि अपेक्षाकृत संकीर्ण अर्थों में प्रयुक्त होता है। यहां विशिष्ट रमणीय शैली में काव्य रचयिता के लिए कवि शब्द का प्रयोग होता है। अतः **वाल्मीकि रामायण को आदि काव्य और महाभारत को काव्य की संज्ञा दी गई है। वाल्मीकि आदि कवि और व्यास कवि कहलाते हैं**। इससे स्पष्ट है कि उत्तर वैदिक काल में कवि शब्द विशिष्ट प्रतिभा संपन्न एक विशेष प्रकार की शैली में

रचना करने वाले विद्वान के अर्थ में योगरूढ़ हो गया था और बाद में इसी अर्थ में प्रयुक्त होने लगा।

अब हमें कवि की कृति की भी चर्चा स्वतंत्र इकाई रूप में कर लेना उत्तम होगा। काव्य के लक्षण के विषय में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न रूपों में अपने-अपने मत उपस्थित किया है। ऐसा लगता है कि इन आचार्यों के समक्ष या तो विशिष्ट काव्य थी या विशिष्ट काव्यसंप्रदाय। परिणाम स्वरूप इनके मतवाद निर्वैयक्तिक नहीं हो सके हैं। भरतमुनि ने शुभ काव्य के सात लक्षण माने हैं-**मृदु ललित पदावली, गूढ़-शब्दार्थहीनता ,सर्व सुगमता ,युक्तिमत्ता ,संधि युक्तता, नृत्य में उपयोग की जाने की योग्यता, रस के अनेक स्रोतों को बहाने का गुण।** इनमें से पांचवा और छठा लक्षण नाटक को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं ।शेष में गुण रीति अलंकार और रस का निर्देश है ।

अग्नि पुराण में काव्य को इतिहास से अलग करते हुए इसकी परिभाषा दी गई है **-काव्य ऐसी पदावली है जो दोष रहित अलंकार सहित और गुण युक्त हो तथा**

जिसमें अभीष्ट का अर्थ संक्षेप में भली-भांति कहा गया हो।

यदि विचार किया जाए तो यह लक्षण काव्य के बहिरंग को प्रधानता देता है। अग्नि पुराण में ही एक स्थान पर **रस को ही काव्य की आत्मा माना गया है।** आचार्य मम्मट और दंडी इसी आदर्श को मानते हैं। भामह शब्द और अर्थ के समन्वय को काव्य कहते हैं। वामन काव्य को अलंकार एवं दोष रहित मानते हैं और सौंदर्य को ही अलंकार कहते हैं ।परंतु रीति को काव्य की आत्मा और शब्दार्थ को शरीर मानते हैं। रूद्र ने भी भामह का ही अनुशरण किया है। आचार्य आनंद वर्धन ने अपने पूर्ववर्ती इन सभी लक्षणों को अनुपयुक्त समझ कर ध्वनि सिद्धांत की प्रतिष्ठा की है और ध्वन्यार्थ को ही काव्य की आत्मा सिद्ध किया है। इसी तरह रागात्मक कुंतक ने **वक्रोक्ति जीवित** में वक्रोक्ति गर्भित अर्थात उक्तिद्वयचित्त मूलक ध्वन्यार्थ को ही काव्य की आत्मा माना है। आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में काव्य का जो लक्षण दिया है वह भामह से भिन्न होते हुए भी इस मायने में भिन्न नहीं है कि इन्होंने ऐसे

शब्दार्थ को भी काव्य माना है जो अनलंकृत हो। बाद के उपाचार्य ने समन्वयात्मक दृष्टिकोण अधिक अपनाया है। काव्य संबंधी अंतिम विवेचन हमें साहित्य दर्पण कार्य विश्वनाथ एवं रसगंगाधर कार्य जगन्नाथ पंडित राज में मिलते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने काव्य को रसात्मक और पंडित राज ने रमणीय अर्थ के प्रति पादक शब्द को काव्य कहा है।

इस प्रकार काव्य के अर्थ की व्याप्ति में कहीं संकोच कहीं विस्तार दिखाई पड़ता है, क्योंकि काव्य के संबंध में सर्वग्राही दृष्टिकोण उत्पन्न नहीं हो सका है।ये जिन तत्वों की ओर संकेत देते हैं वे कुछ तत्व हैं- जैसे भरतमुनि-रस,दंडी -शब्दार्थ की समवायवित्त, वामन- रीति और आनंद वर्धन -ध्वनि। इनमें से प्रत्येक तत्त्व अपने बल पर स्वतंत्र रूप से काव्य की आत्मा होने योग्य हैं परंतु प्रत्येक आचार्य का यह आग्रह रहा है कि उसके मतवाद और अन्य मतवादों में संबंध रहे।

<u>काव्य के भेद</u>

आचार्य मम्मट ने काव्य के तीन भेद किए हैं- उत्तम मध्यम और अधम। यह क वर्गीकरण शब्दार्थ के वाचक लाक्षणिक और व्यंग प्रयोग के आधार पर किया गया है। व्यंग्य काव्य उत्तम, लाक्षणिक मध्यम और वाचक अधम है। मम्मट ने काव्य में रस ,गुणऔर अलंकार की स्थित माना है। परंतु रस को सर्वोपरि बतलाया है ।रस यदि आत्मा है तो गुण रस का उत्कर्ष करने वाला और अचल स्थिति में रखने वाले हैं।अलंकार के संबंध में भी इनका संभवत: यही मत है यद्यपि उन्होंने अनलंकृत वाक्य को भी काव्य माना है अलंकार रस के धर्म नहीं है।अतः वे रस के साक्षात उत्कर्ष न होकर शब्दार्थ द्वारा परस्पर संबंध में उत्कर्ष करते हैं।

आचार्य विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा माना है और उत्तम काव्य रस की सर्वोपरि स्थिति बतलाई है। वर्णनात्मक काव्य को जहां रस की स्थिति नहीं है इन्होंने गौण कार्य कहा है ।इसके अतिरिक्त किसी भी अधम काव्य की स्थिति यह स्वीकार नहीं करते हैं।

<u>काव्य के पक्ष</u>

कृति, कर्ता और ग्राहक इन्हीं तीनों पक्षों के विचार को काव्य के स्वरूप प्रयोजन और हेतु आदि का विचार किया जाता है।काव्य का नाम लेते हुए सर्वप्रथम इसके स्वरूप या लक्षण की बात आती है ।इसके लक्षण वहिरंग निरूपक और अंतरंग निरूपक दो प्रकार के होते हैं । वहिरंग निरूपक लक्षण उसे कहेंगे जिसमें विषय या वस्तु का बोध कराने के लिए उसके वाह्य चिन्हों उल्लेख किया गया हो। अंतरंग निरूपक लक्षण उसे मानेंगे जिसमें वस्तु के आभ्यांतर गुणों की चर्चा की गई है। अतः काव्य का लक्षण दो ढंग का होता है -एक वाह्य या वर्णनात्मक और दूसरा आभ्यंतर। प्रथम प्रकार के लक्षण में काव्य के बाहरी रूप का उसके अवयवों के संगठन का उल्लेख रहता है और दूसरे में कोई ऐसी विशेषता लक्षित कराने का प्रयास किया जाता है जो केवल काव्य में ही पाई जाती है।

यदि यह कहा जाए कि जो शब्द दोष रहित गुण सहित और अलंकार से प्रायः युक्त हो वह काव्य है ।तब तो माना जाएगा कि काव्य के आयोजन का यहां वर्णन मात्र किया गया है। काव्य में शब्द और अर्थ की

योजना रहती है। यह दोनों अन्योन्याश्रित होते हैं। शब्द बिना अर्थ नहीं रह सकता और अर्थ की अभिव्यक्ति शब्द के बिना नहीं हो सकती ।अतः यह कहा जाए कि काव्य वह है जिसमें शब्द और अर्थ साथ- साथ रहते हैं तो यह लक्षण ठीक वैसा ही है जैसे यह कहना कि मनुष्य वह है जिसमें नाक, कान, मुँह ,हाथ तथा प्राण साथ-साथ रहते हैं। अभिप्राय यह कि ऐसा लक्षण काव्य का स्थूल लक्षण है किंतु काव्य के दो प्रमुख अवयव शब्द और अर्थ के वाहक वाक्य को लेकर यदि ऐसा कहा जाए कि रसमय वाक्य को काव्य कहते हैं- **"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्**"" (आचार्य विश्वनाथ साहित्य दर्पण) तो इसमें रस मय विशेषण काव्य के बाह्य रूप का नहीं बल्कि उसके अंत: तत्व का बोधक होगा। कारण यह कि रस मात्र काव्य को ही विशेषता है किसी दूसरी रचना की नहीं। अतः: यह लक्षण अभ्यंतर निपूषक कहा जाएगा। इसी प्रकार यदि शब्द और अर्थ की समन्विति से परे रमणीय अर्थ प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा जाता है।**रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द काव्यम् (जगन्नाथ पंडित रस गंगाधर**)

काव्य का वह तत्व रमनीय शब्द के द्वारा व्यक्त किया गया माना जाएगा जो अन्य में नहीं पाया जाता।मन को रमाने की, उसे कलीन कर लेने की क्षमता काव्य में ही है । ठीक-ठीक लक्षण करने के लिए उसका उद्देश्य जानना आवश्यक है ।इसमें संदेह नहीं कि काव्य का संबंध लोक से है । काव्यकार अपनी रचना लोक के समक्ष इसलिए रखता है कि वह कृति से रंजीत है परंतु कवि लोग रंजन करता किस प्रकार है यदि लोक को दुखद अनुभूति से काव्यानुशीलन काव्य में उन्मुक्त कर देना मात्र उसका तात्पर्य हो तो उसे केवल हास्य और विनोद ही करना चाहिए परंतु कवि केवल सुखद वृत्तियों का ही नहीं विधान करता है बल्कि दुखदाई वृत्ति का भीविधान करता है। लोक रूचि के अवलोकन से स्पष्ट है कि लोक का रंजन जैसे सुख मूलक वर्णनो से होता है वैसी ही प्रतिति उससे भी कहीं अधिक दुख मूलक वर्णन से। इससे स्पष्ट है कि लोकरंजन कवि केवल सुख से ही नहीं बल्कि दुख से भी करता है। रंजन का अर्थ सुखी या प्रफुल्ल करना ही नहीं है दुख की अनुभूति कराकर करुणामई बनाना, रुलाना और द्रविभूत

करना भी है ।अतः जब कवि या काव्यकार सुखात्मक और दुखात्मक दोनों प्रकार के भाव के लिए विधान द्वारा लोक रंजन करता है तो मानना पड़ेगा कि उसका तात्पर्य भाव में लीन करना है। सुख या दुख तो उन भावों के प्रकार की विशेषता है परंतु इन भाव में लीन करना या रंजन करना ही उद्देश्य होता है ।काव्य के भाव में लीन होने से या उसके रंजीत होने से हृदय की वृत्तियों का व्यायाम होता है। वह परिष्कृत होती है। अतः काव्य का चरम लक्ष्य मनोवृत्तियों का परिशोधन है ।पर काव्य एक हृदय कर्ता से निकलकर दूसरे हृदय पात्र या श्रोता तक पहुंचता है इसलिए हृदयों का एकीकरण आवश्यक है ।इसके लिए एक तो यह माना जाता है की काव्य की प्रक्रिया में स्वयं ऐसी विशेषता होती है और दूसरे इसके उत्पादक और ग्राहक में भी कुछ विशेषता होनी चाहिए और यह विशेषता है सहृदय होना।

सहृदय का अर्थ विशेष प्रकार के हृदय से है ।यह विशेष प्रकार का हृदय वही है जो भाव ग्रहण करने में समर्थ है। यदि काव्य कार सहृदयनहीं हो तो वह भाव

को ग्रहण नहीं कर सकता है और सामाजिक को भाव मग्न करने में सफल नहीं हो सकता है । कवि सहृदय अगर नहीं होगा तो वह कवि कार्य में निष्फल हो जाएगा । इसलिए सहृदयता दोनों पक्षों में आवश्यक है इस प्रकार काव्य का उद्देश्य हृदय की वृत्तियों का परिष्कार है और यह परिष्कार रस मग्न होने या मन के रंगने से होता है। अतः काव्य का स्वरूप ठहरता है भाव का विधान करके प्रसन्न करने वाली रचना या रमणीयता और काव्य का उद्देश्य बनता है वृत्तियों का शोधन करना। *****